नारू रोग संसार से विदाई की राह पर

डॉ. अरविंद गुप्ते

मनुष्य कई प्रकार के रोगों से पीड़ित होता है। इनमें से कुछ रोग अधिक खतरनाक होते हैं और मनुष्य को या तो अपाहिज या बदसूरत बना देते हैं या फिर जानलेवा होते हैं। रोगों से मनुष्य की लड़ाई लगातार चलती रहती है, किंतु इन्हें जड़ से उखाड़ फेंकना कभी-कभार ही संभव हो पाता है। यह मानव के प्रयासों का उत्कर्ष है कि कुछ रोगों का पूरी तरह सफाया करने में उसने सफलता प्राप्त कर ली है।

ऐसा एक रोग है चेचक जो एक वायरस के कारण होने वाला एक भयानक रोग था। इस रोग ने लाखों लोगों की जान ली और चेहरे तथा शरीर पर पड़ने वाले स्थाई गड्ढ़ों के कारण इतने ही व्यक्तियों को बदसूरत बना दिया। सन 1980 में संसार को चेचक से पूरी तरह मुक्त घोषित किया गया था।

नष्ट हो चुका एक अन्य रोग है पशुओं में होने वाला पशु प्लेग जिसे अंग्रेज़ी में रिन्डरपेस्ट कहते हैं। यह भी एक वायरस-जन्य रोग है जो पालतू पशुओं में महामारी के रूप में फैलता था और पशुपालकों के लिए एक भयानक संकट के रूप में आता था। संसार के रिन्डरपेस्ट मुक्त होने की घोषणा सन 2001 में की गई थी।

चेचक और रिन्डरपेस्ट दोनों रोगों का सफाया टीकाकरण और जन जागरूकता के माध्यम से किया गया। कहना न होगा कि संसार के सभी देशों की सरकारों ने विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा चलाए गए इन अभियानों में पूरा सहयोग दिया। आजकल चल रहे पोलियो विरोधी अभियान को भी इसी प्रकार सफलता मिली है। केवल पाकिस्तान और अफगानिस्तान को छोड़ कर शेष सभी देशों में पोलियो का उन्मूलन हो चुका है। इन दोनों देशों में आतंकवाद के चलते टीकाकरण और जनजागरण में कठिनाई आ रही है।

एक अन्य रोग के बारे में बहुत कम जानकारी है जिसका विश्व स्वास्थ्य संगठन की अगुआई में लगभग पूरी तरह सफाया कर दिया गया है। यह रोग है नारू, जिसे

अंग्रेज़ी में गिनीवर्म डिसीज़ कहते हैं। यह रोग अधिकतर अफ्रीका और एशिया के विकासशील देशों में पाया जाता था। शायद यही कारण है कि इसके निर्मूलन का उतना प्रचार नहीं हुआ जितना चेचक और रिन्डरपेस्ट के निर्मूलन का हुआ था।

भारत में भी एक समय में यह रोग व्यापक रूप से पाया जाता था। इसका एक प्रमुख कारण यह था कि उन दिनों देश के कई भागों में बावड़ियां (सीढ़ीदार कुएं) काफी संख्या में होती थीं और लोग इनमें उतर कर हाथ या पैर पानी में डुबोते थे और इनका पानी पीते थे। जल प्रदाय की उचित व्यवस्था न होने के कारण लोग तालाबों का भी दूषित पानी पीने को मजबूर होते थे। देश में चलाए गए सघन अभियान के फलस्वरूप सन 2000 में भारत को इस रोग से पूरी तरह मुक्त घोषित कर दिया गया।

नारू का कारण एक कृमि होता है जो मनुष्य में और मीठे पानी में पाए जाने वाले पिस्सू जैसे एक जंतु में परजीवी के रूप में रहता है। इन जंतुओं के छोटे आकार के कारण इन्हें पिस्सू कहा जाता है किंतु ये फुदकने वाले पिस्सुओं के केवल दूर के रिश्तेदार हैं।

मादा नारू कृमि की लम्बाई दो से तीन फीट तक होती है किंतु नर केवल आधा से डेढ़ इंच लम्बा होता है। इस कृमि के लार्वा तीन सप्ताह तक पानी में जीवित रह सकते

हैं। इनके विकास के लिए यह आवश्यक होता है कि इस अवधि में कोई जल-पिस्सू इन्हें खा ले। जल-पिस्सू के शरीर में पहुंचने पर लार्वा चार सप्ताह तक जीवित रह सकता है। जल-पिस्सू ठहरे हुए पानी यानी कुओं, तालाबों आदि में पाए जाते हैं। मनुष्य के द्वारा ऐसे पानी को बिना छाने पीए जाने पर जल-पिस्सू मनुष्य की आंत में पहुंच जाते हैं और मर जाते हैं। किंतु उनके शरीर में उपस्थित नारू कृमि के लार्वा आंत की दीवार में छेद करके देहगुहा में पहुंच जाते हैं।

तीन माह में ये वयस्क हो कर प्रजनन करने की स्थिति में आ जाते हैं। समागम के बाद नर की मृत्यु हो जाती है। समागम के एक साल बाद मादा कृमि मनुष्य की बाहों या टांगों की त्वचा के नीचे पहुंच जाती है और त्वचा की सतह की ओर आने लगती है। इसके फलस्वरूप त्वचा पर एक फोड़ा हो जाता है जिसके कारण काफी दर्द होता है। 72 घंटों में यह फोड़ा फूट जाता है और उसमें से मादा नारू अपना पिछला सिरा बाहर निकालती है। इसके कारण इतना तेज़ दर्द और जलन होती है कि मरीज़ को प्रायः इससे राहत पाने के लिए अपने हाथ या पैर (जहां फोड़ा होता है) को पानी में डुबोकर रखना अच्छा लगता है।

जैसे ही फोड़ा पानी में डूबता है, मादा नारू लाखों लार्वा पानी में छोड़ देती है। इन लार्वा को जल-पिस्सू खाते हैं और नारू का जीवनचक्र फिर शुरू हो जाता है।

इस रोग से मनुष्य मरता तो नहीं है, किंतु नारू के फोड़े के कारण इतना भयानक दर्द होता है कि मरीज़ कुछ भी काम करने की स्थिति में नहीं रह जाता। कई बार यदि मादा नारू का बाहर निकला हुआ सिरा टूट जाता है तो बचे हुए भाग से मरीज़ के शरीर में गठान बन जाती है। इसके कारण मरीज़ लगभग पूरे जीवनकाल के लिए अपाहिज हो जाता है। चूंकि यह रोग प्रायः ऐसे इलाकों में फैला था जहां चिकित्सकीय सहायता आसानी से उपलब्ध नहीं होती थी, मादा के द्वारा किए गए घाव में अक्सर बैक्टीरिया का संक्रमण हो कर टेटनस रोग होने के कई प्रकरण हुए हैं।

इस रोग का कोई इलाज या टीका नहीं है। इससे बचने का एकमात्र उपाय यह है कि ऐसा पानी पीया जाए जिसमें जल-पिस्सू न हों। इसके लिए पीने के पानी को महीन कपड़े से (जिसमें कोई छेद न हो) छानना काफी होता है। इसके अलावा, नारू के मरीज़ को ठहरे हुए पानी में हाथ या पैर डुबोने से रोकना भी रोकथाम का एक उपाय होता है ताकि उसके शरीर में पल रही मादा पानी में अंडे न दे सके और अन्य लोग संक्रमित न हों। जिन स्थानों में लोगों को पीने का साफ पानी मिलने लगा उन स्थानों में नारू की अपने आप रोकथाम हो गई है।

इस रोग का प्रकोप कम करने के लिए कुछ उपाय अपनाए जाते रहे हैं। एक प्राचीनतम उपाय का उल्लेख 1550 ईसा पूर्व में मिस्र में भोजपत्र पर लिखे गए चिकित्सा सम्बंधी दस्तावेज़ में मिलता है। वह है मरीज़ के जिस भाग में फोड़ा हो उस भाग को पानी से भरे बर्तन में डुबोना। ऐसा करने पर मादा नारू लार्वा को बाहर छोड़ने के लिए अपना पिछला भाग फोड़े में से बाहर निकालती है। इस प्रकार वह अधिक से अधिक लार्वा बाहर निकाल देती है। फिर मादा के पिछले छोर को एक तीली पर लपेटा जाता है ताकि वह वापस अंदर न जा सके। इसके बाद किसी अनुभवी व्यक्ति द्वारा तीली को पकड़ कर मादा को उस पर लपेटते हुए धीरे-धीरे पूरी तरह बाहर खींच लिया जाता है। यह प्रक्रिया बहुत अधिक सावधानीपूर्वक इसलिए करनी पड़ती है ताकि बाहर निकालते समय मादा का शरीर टूट न जाए। इस प्रक्रिया में कई घंटों से लेकर कई दिन तक लग सकते हैं। जिस बर्तन में मादा लार्वा दे चुकी होती है उसके पानी को ज़मीन पर ऐसे स्थान पर फेंका जाता है जहां से वह किसी तालाब या कुएं में न पहुंच सके। यह उपाय वर्तमान समय तक प्रचलित था।

1984 में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अमेरिका के सेन्टर्स फॉर डिसीज़ कन्ट्रोल एन्ड प्रिवेन्शन से अनुरोध किया कि वह नारू उन्मूलन के अभियान की अगुवाई करे। साथ ही, अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति जिमी कार्टर और उनकी संस्था कार्टर सेन्टर भी इस अभियान से जुड़ गए। कार्टर ने स्वयं कुछ अफ्रीकी गांवों में जाकर इस रोग की रोकथाम का प्रचार किया। इसका परिणाम यह हुआ कि जहां 1980 के दशक में इस रोग से 20 एशियाई और अफ्रीकी देशों के

लाखों लोग पीड़ित थे, वहीं अब केवल चार अफ्रीकी देशों में इक्का-दुक्का मरीज़ पाए जाते हैं। सन 2015 में केवल 22 मरीज़ों की पहचान हुई है। अब यह उम्मीद की जानी चाहिए कि आगामी एक-दो वर्षों में नारू भी पोलियो और चेचक के समान विलुप्त रोगों की सूची में शामिल हो जाएगा। ***(स्रोत फीचर्स)***

अगले अंक में....

स्रोत मई 2016
अंक 328

- **घटते भूजल पर चेतने का समय**
- **पालतू पशु भी हैं वैश्विक तपन का कारण**
- **नींद में कमी और उसका स्वास्थ्य पर प्रभाव**
- **जीनोम डैटाबेस विधेयक का औचित्य क्या है?**